अफ़साने

By Wordcraft,
The Ramjas Literary Society

त्याग सैनिक के

आकर देखो कैसे कटते दिन मेरे तूफानों में
तेरे जैसा जीना मिलता बस हमको अरमानों में

कैसे हो हालात यहां के हंस कर रहना पड़ता है
कैसे भी हो दर्द यहां के हंस कर सहना पड़ता है
त्याग और बलिदान देख कर नाम जुड़ा अभिमानों में
आकर देखो...
तेरे जैसा जीना...

उम्र अट्ठारह हुई हमारी हम है जिम्मेदार बनें
कुछ साथी है बनें सिपाही कुछ तो हवलदार बनें
मर कर ही तो मेडल मिलता हमकों तो सम्मानों में
आकर देखों...
तेरे जैसा जीना...

पत्थर हम पे फेकने वालों नेत तुम्हारी खोटी है
मेरे ही बल-बुते तुम को मिलती खाने को रोटी है
फेंक के पत्थर खुश रहते वो समझ कहा नदानों में
आकर देखो...
तेरे जैसा जीना...

नही सुरक्षित हम घाटी में, घर घर दुश्मन होते है
डटे रहें हर पल सरहद पर, तो जाकर वो सोते है
यही सोच कर सह लेते सब, खड़े कहा अनजानों में
आकर देखो...
तेरे जैसा जीना...

खुद को हम न्यौछावर कर दे भारत माँ की सेवा में
ख्वाहिश है एकलौती मेरी मिले कफ़न तिरँगा मेवा में
डटी रहे वीरों की टोली हम सच्चे दीवानों में
आकर देखो...
तेरे जैसा जीना...

करते करते सेवा माँ की मिट्टी में मिल जातें हैं
देख के मेरे इस जज्बे को अम्बर भी हिल जातें हैं
दहशत ही फैलाना चाहें सोंच कहा हैवानों में
आकर देखो...
तेरे जैसा जीना...

हिंदुस्तान धरोहर मेरी प्यार से उसको हिंद कहें
डूबें रहें देश भक्ति में सुबह शाम जय हिंद कहें
रेत बिछौना बर्फ है चादर दर्द ही मिलता खानों में
आकर देखो...
तेरे जैसा जीना...

- दिलीप तिवारी (इश्क़)

Editorial

This broadsheet aims to provide a platform for the many musings of the students of Ramjas College, celebrating the aazaadi to express. Here, you will glimpse the afsāāne of Ramjas which was collected by the Literary Society but never published in the form of the College Magazine. It revels in the glory of words, colours, poetry and Ramjas- and brings to its readers an invitation to join the karwaan and let the minds wander!

تم نے جو کالے سائے میرے شیشوں پہ لٹکائے ہیں
میں نے ان کی پرچھائی میں یہ پھول اُگھائے ہیں

ان ہی پھولوں کا یہ رنگ

تمہارے سرداروں کو اندھا کرنے کے لئے کافی ہے
یہی لال رنگ، جو تمہیں گل لگ رہا ہے،
راستے پہ سوکھا خون ہے۔

تم خون بہا رہے ہو،
میں باغ سینچتی جا رہی ہوں

tum ne jo kāle sāye mere sheeshoñ pe latkāye haiñ
meine un kī parchhāi me ye phool ugāye haiñ
Inhi phooloñ kā ye rañg
tumhāre sardāroñ ko andhā karne key liye kāfi hai
Yahi rañg jo tumhe gul lag rahā hai
Rāste pe sookhā khoon hai
tum khoon bahā rahe ho
meiñ bāgh señchti jā rahī hoon

- Malik Irtiza

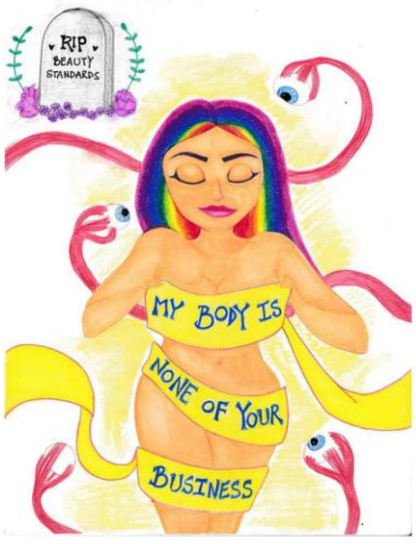

"If only our eyes saw souls
instead of bodies,
how very different
our ideals of beauty
would be."

- Niharika Payal

HUMANS of RAMJAS

"They are so frustrated." That's the line students usually use for the non-teaching staff of Ramjas College. And then you see Neelu, a member of the maintenance staff, working in Ramjas college for the past six years and you wonder if what students say about them is true enough or not. She's delighted to talk about Ramjas, even more than the students are. "I love Ramjas from the core of my heart. The students and teachers are really polite and friendly." The honesty reflects in her eyes. "Ramjas has provided me with the means of livelihood. It has made me independent. I can take care of my family in a way better than before." Her gratitude reminds us of the stigma that prevails, the pre-conceived notions people have for financially independent women, in this country, that they are too headstrong and self-assured, things that women are not supposed to be. In the eight to nine hours she spends in Ramjas every day, she feels home. She laughs when she is asked about her first reaction on seeing Ramjas. "I had not seen such big a college." But with right guidance, provided by her colleagues, she quickly adapted herself to this vibrant, colorful environment and quickly gained respect for her efforts. The students she works so hard for appreciate her hard work. The time spent with students is what she cherishes the most. With smile from both the ends, the conversation ceases. We go back to the Amphitheatre, and on our way, we see Neelu, walking hurriedly. We see each other and smile, and think, that 'Humans of Ramjas' is 'Humans' because of people like Neelu, working here. **– Aman Sinha / Photograph by Ananya Pandey**

Neelu Didi

मेरे हमदम, मेरे दोस्त

ये तुम्हारा लिखकर मिटाना,
एहसान कर के यूं भूल जाना,
कुछ तो बयाँ करता है,
मेरे हमदम मेरे दोस्त।

ये जो तुम्हारे होंठों की हँसी है,
न जाने कितनी कहानियाँ जिसके पीछे छुपी हैं,
ये कहीं तो खो गई है,
इतना मुश्किल भी नहीं इसको वापस लाना,
मेरे हमदम मेरे दोस्त।

आजकल कुछ अलग-थलग से रहते हो,
न जाने क्यूँ ख़फ़ा-ख़फ़ा से रहते हो,
आसां नही माना, मगर इतना मुश्किल भी नहीं
हमें बताना,
वर्ना किस काम का ये याराना,
मेरे हमदम मेरे दोस्त।

हाँ, हम काफ़ी दिन बाद मिलेंगे,
मगर किसी तरह तो फिर से पहल करेंगे,
कुछ नहीं तो राह चलते टकरा जाना,
बस इस बार हक़ीक़त में मिलने आना,
मेरे हमदम मेरे दोस्त।

साथ कि ज़रूरत जो नहीं तुम्हें तो बता जाना,
ख़्वाबों में ही सही, मगर मिलने ज़रूर आना,
इन्तेज़ार है दोस्त, हमने भी बहुत किया,
दोस्त बोल कर कहीं रुस्वा तो नहीं किया?
कहो, किया है क्या?
मेरे हमदम मेरे दोस्त।

- गगन हितकारी

आज़ाद रामजस

दिल्ली का दिल कहे जाने वाले दिल्ली विश्वविद्यालय की धड़कनों में बसा रामजस जिसका अतीत और वर्तमान दोनों स्वतंत्रता के एक प्रतीक के रूप में रहा है और ये स्वतंत्रता शब्द आज या पिछले कुछ वर्षों से इससे नही जुड़ा अपितु देश की आज़ादी के लिए यहाँ के छात्रों की स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी ने इसकी रग-रग में क्रांतिकारी भविष्य की ज्वाला भर दी थी और शायद यही कारण है यहाँ हमेशा आज़ाद हवाऐं चलती हैं बाहर हवाओं का रुख कुछ भी हो। यहाँ हर साल हजारों छात्र अपने सपनो का संसार लेकर आते हैं। पिछले 102 सालों में चेहरे बदलते गए, किस्से बदलते गए लेकिन इसकी जीवटता अब भी वही है। कॉलेज में प्रवेश करते ही कैंटीन वाला रास्ता, आसपास कई सारी लॉन्स और वृक्षों से घिरा हुआ रामजस देखते बनता है। यहाँ शायद ही कोई होगा जो आपको बिना टोली के दिखाई पड़े और पास में ही आपको एक नोटिस बोर्ड दिख जाएगा जहाँ पर कॉलेज की महत्वपूर्ण गतिविधियों का ज़िक्र दिखाई देता है, कहीं किसी आंदोलन का निमंत्रण है तो कहीं किसी प्रतियोगिता का। और अगर बात सीखने की हो तो कहते हैं रामजस खुद में एक पुस्कालय है जिसका एक कॉलम है ज़िन्दगी और शायद इसीलिए एक बात जो रामजस के लिए सारगर्भित है और वो ये है कि यहाँ पर Maximum Learning क्लासरूम से बाहर होती है। कैन्टीन के बगल में Amphitheatre और पीछे ECA रामजस की दो ऐसी जगह हैं जहाँ पर दिनभर चहल-पहल रहती है यहाँ कुछ लोग आपको डांस प्रैक्टिस करते नजर आ जाएंगे, कुछ संगीत में मग्न दिखाई देंगे, कुछ वाद-विवाद करते नजर आएंगे, कुछ कविता पाठ करते नजर आएंगे तो वहीं कुछ उन नजारों को देखते नजर आएंगे और अगर आप भीड़-भाड़ से दूर हैंगआउट करना चाहते हैं तो आप पार्किंग लॉन के सामने रामजस के प्रसिद्ध स्थान सुट्टा लेन में जाइये और इसी गली से आता है रास्ता पुरानी इमारत का, वो इमारत जिसे हर बरस रंगा जाता है और हर बार नई यादों के लिए तैयार किया जाता है और ये वो इमारत है जिसने हज़ारों संघर्षों को देखा है,आज़ादी को जिया है और खुद में ना जाने कितनी यादें सँजोये हुए है और शायद इसीलिये पुरानी इमारत में एक अलग और दिव्य रामजस नजर आता है और अगर बात रामजस की हो रही है तो स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स का ज़िक्र होना लाजमी है जहाँ तरह तरह के खेल फिर चाहे वो बास्केटबॉल हो, टेनिस हो, फुटबाल हो, क्रिकेट हो, निशानेबाज़ी हो इत्यादि खेलों के नजारे दिख जाएंगे। प्रैक्टिस के बाद त्वरित छाया की तलाश हो या फिर इलेक्शन के मौसम में ग्रुप फ़ोटो लेना हो या फिर हैंगआउट करना हो इत्यादि कामों के लिए बास्केटबॉल कोर्ट के पास बनी बैठकी को काफी प्रयोग में लाया जाता है। कहते हैं परिवर्तन जीवन का हिस्सा है इसी संदर्भ में नई इमारतों की भी अपनी एक खास पहचान बन चुकी है जहाँ से एक खूबसूरत रामजस का नजारा साफ दिखाई देता है और जहाँ से देखने पर उन पुरानी इमारतों की प्राचीनता हमें यादों के शहर में ले जाती है।

- अमन सिंह

By Ananya Pandey

By Aryamaan Bose

Remembering the old AUDITORIUM

For the current second and third year students of Ramjas College, the auditorium has till recently been space that, though centrally located, was unknown and out-of-bounds, save for the two rubble-strewn corridors on either side – the perfect refuge on rainy days. Through the small crack between the doors, a broken stage overlooking piles of dust could be seen, with its strangely ephemeral atmosphere roofed by open sky. The dust of that state of simultaneous construction and destruction has settled now; however, the old auditorium was host to innumerable events and visitors and must, like a retired professor, be remembered for the part it has played in the vibrant cultural life of Ramjas. Bhisham Sahni visited Ramjas in the 80s and spoke about Tamas in the auditorium. Renown historians such as Irfan Habib, Romila Thapar, Tapan Raychaudhuri, Sumit Sarkar, and Tanika Sarkar have visited it; it witnessed Bipin Chandra's talk on remembering what it was like to teach in DU in the 50s and 60s. The first AK Ramanujan tribute lecture was delivered by Girish Karnad in the auditorium, followed by a Dastaan Ram Ji Ki by Danish Hussain and Mahmood Farooqi. On the hundredth birth anniversary of Majaz, a day-long programme was held in which his niece, Zarina Bhatti, and other acquaintances spoke. In 1998, Naseeruddin Shah and Benjamin Gilani performed Samuel Beckett's play, Waiting for Godot. Lec dems by the Culture have happened in the auditorium; film screenings have been held there as well. The first queer film festival, compered by Gautam Bhan, was held in the early 2000s. A public meeting to discuss the massacres in Gujarat took place in the auditorium in 2002. In 2004, teams of delegates from India, Pakistan, Bangladesh, and Sri Lanka came together in the auditorium for the first South Asian Economics Students' Meet. In 2007, a spontaneous student mobilization against sexual harassment took place after students went from class to class and gathered in the auditorium to demand justice. The ICC orientation for the prevention of sexual harassment was thus a fitting inauguration for the new auditorium this year, for which classes where cancelled so that students across courses could congregate there. For students to openly talk about homosexuality and emotional abuse within relationships on stage in the auditorium was nothing short of historic for Ramjas College.

- Ananya Pandey

Election Day.

my size 5 feet run across the Vishwavidyalaya metro station
toddlers distribute pamphlets to strangers
they throw them in the air and laugh
a simple game
i recall my metro muses,
the woman with fake piercings,
a poker-face playing with Snapchat filters,
a fool writing poetry for her lover
a Chandni-Chowk mistress dancing to the hum of the train.
do they know?
do they know about the militarized north campus?
the men in khaki behind the yellow barricades,
the screaming red sirens,
the white roads,
graffiti replaced by misspelled names.

a St. Stephen's boy stares at my shirt
maroon, with a white feather near my left breast
and the name of an anti-national society.
i jog to Ramjas,
ID-card aunty usually smiles at me,
today, she inspects me through the barricades
demands to see my ID
and pats me on the back as I go in.
strangers cross my path
they whisper names and numbers in my ear.
do they know that I have a bad memory?

i get in line,
the people behind me whisper names.
their voices lost in the September haze.
a fight breaks out.
men grabbing each other by the throat.
warning each other that they'll fuc
their mothers and sisters.
the queue reforms.
a military silence.
we march in.
a ping.
a beep.
we're finished.
whispers follow me as I leave Ramjas.
i find solace in between the barricades.

- Jaishree Kumar

Viva La Vida
110 years of Frida

By Anagha

पुरानी यादें

पुरानी यादों का ही हिसाब कर दे,
लौट आ और घर आबाद कर दे।

मेरी मन्नतें, ख्वाहिशों छोड़ खुदा तू,
उसकी गफलतो का निकाल कर दे।

ये जो जल रहा है दहलीज़ पर मेरी,
आ इस दीए को आफताब कर दे।

हवा ऐसी भी चलती है गलियों में,
अच्छे-अच्छे को ये बरबाद कर दे।

ख़सारा करके बैठी हूँ मझधार में मैं,
खुदा भेज मदद, कोई कमाल कर दे!

है हौसलों में उसके भी जान इतनी,
कि वो पत्थर को भी चट्टान कर दे।

- कृतिका सिंह चौहान

Middle Class Underwear

I fluently call myself middle-class. It is a loaded admission, I have realized. My avarice and ambition are conveniently vindicated because I lack the monetary influence to be important, but I am not so poor as to be dismissed. A comfortable middle-position, satiated and indifferent; stability and security, convenient facilitators.

I was never fed stories or ideas of love, I was only witness to togetherness. It was supposed to be obvious the world was always working against me, so I had to push back. I was never told to worry about the contradictions of what I do, only their productivity and benefit. I was schooled very poorly in kindness, but very well in its show-casing. The aim was to make it. These were the lessons but my reality is far more pleasing. My parents have never been intimate with me, but they have been infinitely humble. I am lulled into peace with love that transcends understanding.

But the theatricality of the whim that the middle-class likes to ride on has never unleashed itself so forgivingly as to be bundled in humor. And so, the tale of the middle-class underwear goes.

The act of cleaning must involve as little purchasing activity as possible. As a result, all our under-wears, t-shirts, pillow cases- any cloth, gender and purpose indiscriminate, with enough holes to surrender usability, ends up becoming a scrap cloth so that on Sunday mornings, I am usually round up for furniture cleaning by my father, and I find myself scrubbing furniture with my own underwear.

My father will sort all the washed clothes into those that are to be sent to the dhobi and those that are to be folded and will also go to the length of sorting my brother and his underclothes but will leave my mother and mine. It is a deliberate act of what seems like dubbed respectfulness. That was until the full extent of its theatricality presented itself to me: he's been soaking spilt water with female tattered underwears for as long as he's assigned himself the task of filling water bottles with the purified-water tap.

I often present a frugality driven chagrin to my mother when she asks me if I need any more underwears. The answer has always been no and I am proud of it. I always have enough. Then yesterday, when the maid had not shown up in three days and a single underwear remained in my almirah, I forgot to judge the holes. I considered lack of hygiene, boredom, just-one-of-those-days as possible reasons for the distracting discomfort I was feeling in my crotch. It lasted the day. Now, the thing about endurance is that it is my mother's favorite sermon: she doesn't let me take pain-killers for my period cramps and when I was about thirteen, probably smaller, she forced us onto a dilapidated DC bus which was clearly trying to push its limits of age and volume, while my mother was pushing my patience. So, endure, I did. It was a scrapped underwear that I had been wearing, used in what ways, I didn't want to imagine. My only solace was that it had been washed and had therefore, accidentally landed in my cupboard. Or so, I like to imagine.

- Anahita Nanda

HEIRLOOM

My mother knows a secret language.
The women in her family spoke to each other in it
Sometimes
When a secret had to be passed,
When a giggle had to be handed down in a room full of stern men with unlaughing eyes,
When anger had to be revealed, but only to a few ears which were accustomed to the sound,
When an injury had to be shared-
It's wound wrapped around the cotton torn off the edges of their uncouth sarees.
Sisters, Mothers, Daughters,
rolling their tongues into shapes the men never could understand.
My mother's mother knew that secret language.

My mother has tried teaching me the language.
She sat me down and let me in on the secret,
The giggle, the anger, the wound.
There's something about heirlooms,
the rough edges
the yellowing pages
the hazy glaze of a past.
It's like the seed my grandmother swallowed
Grows into a tree in my belly.

- Dipanjali Singh

Put together by :-

Saloni Khandal	Anagha Menon
Mitsu Sahay	Bhavya Goel
Irtiza Malik	Aman Singh
Dipanjali Singh	Anisha Bhargava
Ananya Pandey	
Shalini Shukla	
Kuldeep	

'ना ताना-बाना बुनता हूँ'

ना ताना बाना बुनता हूँ न सपने खुद के चुनता हूँ,
मैं आम आदमी हूँ लोगों मैं भरी भीड़ में मिलता हूँ।
कुछ रिश्तों की परछाई में कुछ अनबुझ सी गहराई में,
मैं अक्सर देखा जाता हूँ क्यूँ गर्दिश और तन्हाई में।

जो सपने चुने वो अपने नहीं- जो अपने हुए वो सपने नहीं,
अल्फ़ाज़ों की इस दुनिया में उम्मीदों के सुर बुनता हूँ,
मैं आम आदमी हूँ लोगों मैं भरी भीड़ में मिलता हूँ।

बदलती फ़िज़ा- बदलती ज़मीं, दुःखों की यहाँ ना होती कमी,
दो टुकड़ों को ही खाकर मैं सब चैन सरीखे सोता हूँ,
मैं आम आदमी हूँ लोगों मैं भरी भीड़ में मिलता हूँ।

ना दौलत यहाँ- ना शौहरत यहाँ; उम्मीदों से है ये सारा जहां,
जीवन की हर इक बाधा में क़ाबिलता के संग चलता हूँ,
मैं आम आदमी हूँ लोगों मैं भरी भीड़ में मिलता हूँ।

हैं हिन्दू यहाँ- हैं मुस्लिम यहाँ; है रोज़ा यहाँ- है काफ़िर यहाँ,
कुछ लोगों के कहने से ही मैं हिन्दू मुस्लिम होता हूँ,
मैं आम आदमी हूँ लोगों मैं भरी भीड़ में मिलता हूँ।

वो मुझसे ही है- मैं उससे नहीं; मैं कहता रहा-वो सुनता नहीं,
संघर्षों के इस जीवन में मैं राजनीती को चुनता हूँ,
मैं आम आदमी हूँ लोगों मैं भरी भीड़ में मिलता हूँ।

ना महलें यहाँ- न ताजों के घर, न खुशबू यहाँ- न तारों पे सर,
ग़र हर सपने की ख़्वाहिश को मैं परिवार में जीता हूँ
मैं आम आदमी हूँ लोगों मैं भरी भीड़ में मिलता हूँ।

तेरा दर्द है- मेरा साथ है; तेरा साथ है मेरी बात है,
तू दुःख को मेरे सुनता है मैं दुःख को तेरे सुनता हूँ,
मैं आम आदमी हूँ लोगों मैं भरी भीड़ में मिलता हूँ।

ना ताना- बाना बुनता हूँ ना सपने खुद के चुनता हूँ,
मैं आम आदमी हूँ लोगों मैं भरी भीड़ में मिलता हूँ।
कुछ रिश्तों की परछाई में कुछ अनबुझ सी गहराई में,
मैं अक्सर देखा जाता हूँ क्यूँ गर्दिश और तन्हाई में।

-निपुण वशिष्ठ

Contact/Feedback:

Email: wordcraftramjas@gmail.com

Facebook: https://www.facebook.com/ramjaslitsoc/

Instagram: wordcraft_ramjas